The Asian Thinker
A Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Year-7 Volume: IV (Special), October-December, 2025
Issue-28 ISSN: 2582-1296 (Online)
Website: www.theasianthinker.com **Email**: asianthinkerjournal@gmail.com

52. भारतीय चिंतन में धर्म एवं न्याय की अवधारणा

डॉ. देवेन्द्र प्रताप तिवारी
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
राम दयालु सिंह महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

सारांश

धर्म वैदिक अवधारणा ऋत से लिया गया है और उसका स्थान ले चुका है, जिसका शाब्दिक अर्थ है, 'सीधी रेखा'। ऋत प्रकृति के नियम को दर्शाता है, यह नैतिक नियमों को दर्शाता है, और धार्मिकता पर आधारित है। जब कोई चीज ऋत होती है तो इसका सीधा सा मतलब होता है कि वह चीज सत्य है, सही है और इससे ज्यादा कुछ नहीं। धर्म प्राकृतिक नियम को दर्शाता है। जो कुछ भी सही, न्यायपूर्ण और नैतिक है, वह धर्म है। धर्म एक कर्तव्य आधारित कानूनी व्यवस्था थी, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का समाज के अन्य सदस्यों के प्रति कर्तव्य होता था। अगर हम "पुराणों" को देखें तो उस समय के लोग अपने कर्म से निर्देशित होते थे। वे मानते थे कि उनका कर्म ही उनका धर्म है। इसीलिए महाभारत के युधिष्ठिर को "धर्म राज" के नाम से जाना जाता था।

माधवाचार्य कहते हैं "धर्म को परिभाषित करना सबसे कठिन है। धर्म को वह बताया गया है जो जीवों के उत्थान में मदद करता है। इसलिए जो जीवों का कल्याण सुनिश्चित करता है, वह निश्चित रूप से धर्म है। विद्वान ऋषियों ने घोषित किया है कि जो धारण करता है वही धर्म है। जैसा कि कई अन्य संस्कृत शब्दों के मामले में होता है, अंग्रेजी या किसी अन्य में संस्कृत शब्द 'धर्म' के लिए सटीक समकक्ष खोजना काफी कठिन है। इसका अनुवाद अध्यादेश, कर्तव्य, अधिकार, न्याय, नैतिकता, कानून, गुण, धर्म, नैतिकता, अच्छे कार्य, आचार संहिता आदि के रूप में किया गया है। धर्म के अनुरूप किसी अन्य भाषा में कोई शब्द नहीं है। धर्म के अपने कानूनी, नैतिक और सामाजिक अर्थ हैं जो परंपरा और ऐतिहासिक विकास के दौरान विकसित हुए हैं। इस शोध पत्र में भारतीय चिंतन परंपरा में धर्म की अवधारणा का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। इसमें विशेष रूप से अर्थशास्त्र और शांति पर्व में वर्णित धर्म के विभिन्न स्वरूपों का विश्लेषण किया गया है जो पूर्ण रूप से द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है।

मुख्य शब्द: धर्म, संस्कृति, न्याय, ऋत, कर्तव्य।

परिचय:

संपूर्ण हिंदू जीवन पद्धति धर्म की अवधारणा पर आधारित है, जिसे शाश्वत माना जाता है और जो ईश्वरीय इच्छा को प्रकट करता है। भारतीय परंपरा के अनुसार, धर्म मनुष्य को अन्य सभी प्राणियों से अलग करने वाला चरित्र है। मानव जीवन के सभी पहलू इसके चरित्र में समाहित हैं। धर्म की अवधारणा की सही व्याख्या, इसके विभिन्न निहितार्थों में, दर्शन में संपूर्ण भारतीय परंपरा की पर्याप्त समझ और प्रशंसा की कुंजी है। धर्म शब्द, मूल धृ (धारण करना, सहारा देना, पोषण करना) से लिया गया है, जो 'विधि' शब्द द्वारा अभिव्यक्त समान विचार को दर्शाता है। धर्म, अपने व्यापक और यथार्थ महत्व में, उन विशेषताओं या गुणों को दर्शाता है जो कारणों और उनके प्रभावों के बीच अविभाज्य संबंधों को इंगित करते हैं। सबसे प्राचीन साहित्य वेदों में, धर्म शब्द को इस सबसे प्राथमिक अर्थ में समझा और व्याख्या किया गया है। अन्य संस्कृतियों में, धर्म को नैतिकता पर प्राथमिकता दी जाती है, इस विश्वास में कि नैतिकता धर्म से निकलती है। हालाँकि, संस्कृत में, नैतिकता या कर्तव्य के अलावा धर्म के लिए कोई अलग

The Asian Thinker
A Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Year-7 Volume: IV (Special), October-December, 2025
Issue-28 ISSN: 2582-1296 (Online)
Website: www.theasianthinker.com **Email**: asianthinkerjournal@gmail.com

शब्द नहीं है। धर्म तीनों का प्रतिनिधित्व करता है। धर्म शब्द का तात्पर्य यह है कि नैतिकता और धर्म अविभाज्य हैं। आधुनिक विचारों के परिप्रेक्ष्य में, ऐसे युग में, जिसमें धर्मनिरपेक्षता को आदर्श माना जाता है और धर्म को लंबे समय से नजरअंदाज किया जाता रहा है, धर्म का ऐसा पारंपरिक दृष्टिकोण एक गतिशील शक्ति के रूप में दिखाई दे सकता है। इस अर्थ में धर्म वैश्वीकरण की जीवंत भावना हो सकती है; जैसा कि हमारे महान महाकाव्य महाभारत में उल्लेख किया गया है, "धर्म वह है जो ब्रह्मांड के लोगों को एक साथ रखता है।" धर्म, व्यापक अर्थ में, विश्व-व्यवस्था या कानूनों का कोड है जो मनुष्यों को एक साथ बांधता है। सार्वभौमिक शांति और सद्भाव धर्म के सार्वभौमिक प्रदर्शन का फल है। प्राचीन सभ्यता केवल एक संकेत है जो हमें जीवन के नए और नए आयामों की ओर हमारी आगे की यात्रा पर मार्गदर्शन करती है। धर्म की भूमि भारत ऐसी ही एक प्राचीन सभ्यता है। धर्म को एक संकेत और दर्शन के रूप में पेश किया जाता है। इसलिए, यह इस ग्रह, यानी कर्मभूमि पर मानवता के लिए एक अनूठा योगदान है। संपूर्ण हिंदू जीवन शैली धर्म की अवधारणा पर हावी है, जिसे शाश्वत और ईश्वरीय इच्छा को प्रकट करने वाला माना जाता है। भारतीय परंपरा के अनुसार, धर्म मनुष्य का वह गुण है जो उसे अन्य सभी प्राणियों से अलग करता है। मानव जीवन के सभी पहलू उसके गुण में समाहित हैं।

धर्म भारतीय दर्शन की प्रमुख अवधारणाओं में से एक है, यह पूरे विश्व को भारत की अमूल्य देन है। एनी बेसेंट ने 1898 में थियोसोफिकल सोसायटी के वार्षिक अधिवेशन में धर्म पर अपने संबोधन में कहा था कि "यह (धर्म) दुनिया के लिए भारत का शब्द है"। (बेसेंट, 1964) धर्म शब्द मूल धातु ध्र के विभिन्न रूप से बना है, जिसका अर्थ है, 'सहन करना', 'समर्थन करना' और 'बनाए रखना'। ब्रेरेटन, 2004, पृ. 450)। जैसा कि शांति पर्व में भीष्म ने युधिष्ठिर को उत्तर देते हुए कहा था कि;

“धारणात् धर्मं इत्याहुः तस्मात् धारयते प्रजाः।
यः स्यात धारण संयुक्त: स धर्म इति निश्चय:।।’’ (महाभारत, शांति पर्व, 109,11)

(अर्थात धर्म ही एकमात्र ऐसी चीज है जो लोगों को बनाए रखती है और जो निर्मित ब्रह्मांड को बनाए रखती है, उसका समर्थन करती है और उसे बनाए रखती है, जिसके बिना ब्रह्मांड बस बिखर जाता है, वह 'धर्म' है।)

'धर्म' एक संस्कृत शब्द है, इस अर्थ को व्यक्त करने के लिए अंग्रेजी या किसी अन्य भाषा में कोई भी उपयुक्त शब्द नहीं है। इसका विभिन्न रूप से कर्तव्य, अधिकार, न्याय, नैतिकता, धर्म, आचार, अध्यादेश, कानून, अच्छे काम, आचार संहिता आदि के रूप में अनुवाद किया गया है। पी.वी. काणे ने सही कहा है: "धर्म उन संस्कृत शब्दों में से एक है जो अंग्रेजी या किसी अन्य भाषा में सटीक अनुवाद के सभी प्रयासों को धता बताता है। उस शब्द के कई उतार-चढ़ाव हैं'(धर्मशास्त्र का इतिहास - खंड 1, पृष्ठ 1)। धर्म की अवधारणा समय के साथ विकसित होती रही है। धर्म शब्द का प्रयोग विभिन्न शास्त्रों में भिन्न-भिन्न अर्थों में किया गया है, इसलिए इसके अनेक अर्थ हैं। धर्म का सर्वाधिक प्रभावी प्रयोग नैतिक और आचारिक अर्थ के संदर्भ में होता है।

धर्म शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में भी मिलता है। ऋग्वेद के श्लोकों में धर्म शब्द का प्रयोग ‘वस्तुओं की प्रकृति’ या ‘ब्रह्मांडीय नियम’ के अर्थ में किया गया है। जैसा कि ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में वर्णन किया गया है –

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तनि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमान: सचंत यत्र पूर्वे साध्या: संति देवा: ॥(ऋग्वेद, 10.90.16)

The Asian Thinker
A Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Year-7 Volume: IV (Special), October-December, 2025
Issue-28 ISSN: 2582-1296 (Online)
Website: www.theasianthinker.com **Email**: asianthinkerjournal@gmail.com

(अर्थात देवताओं ने यज्ञ के माध्यम से परमपुरुष के बलि स्वरूप की पूजा की। इस यज्ञ से उत्पन्न धर्म का पालन करके देवता महान महिमावान होकर उस स्थान (स्वर्ग) को ग्रहण करते हैं, जहाँ प्राचीन परमपुरुष (परमपुरुष) निवास करते हैं।)

आरंभ में धर्म का यही अर्थ था, यहाँ धर्म शब्द का अर्थ ब्रह्मांडीय नियम था। धर्म के नैतिक अर्थ बाद में आए। ऋग्वेद के ही एक अन्य श्लोक में धर्म शब्द का प्रयोग पालनकर्ता, समर्थक या पालनकर्ता के अर्थ में किया गया है। इसमें देवताओं और मनुष्यों दोनों ने अग्नि को रक्षक, कर्तव्य का पालनकर्ता, यज्ञ का संपन्नकर्ता बनाया; वे उसी का सहारा लेते हैं (जो सूर्य के समान विशाल है, भोर का अग्रदूत है, तेजस्वी वायु का पुत्र है।)

आरंभिक वैदिक साहित्य में हमें एक शब्द 'ऋत' मिलता है जो धर्म शब्द से बहुत निकटता से जुड़ा हुआ है। "ऋत" एक ऐसी प्रणाली का प्रतिनिधित्व करता है जो प्राकृतिक तत्वों की एक स्थिर और स्थापित व्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है। ऋत शब्द का अर्थ 'सार्वभौमिक सद्भाव' है। वेदों में सूर्य (सूर्य), चंद्र (चंद्रमा), उषा (भोर) और संध्या (शाम) जैसे देवताओं को जीवित तत्वों के रूप में दर्शाया गया है, जिनका मानव जीवन पर व्यापक नैतिक प्रभाव हो सकता है। इसीलिए भौतिकवादी संदर्भ में ऋत में नैतिक तत्व भी जोड़े गए हैं। ऋग्वेद के सूक्तम में उद्धृत है कि "मनुष्य और देवता दोनों ऋत का पालन करने के लिए बाध्य थे।" अतः ऋत संसार की भौतिक शक्तियों (उषा, सूर्य, अग्नि, चन्द्र) की नियमितता की व्यवस्था प्रस्तुत करता है तथा उनके कार्यों का निर्धारण भी करता है।

स्मृतियों को भी धर्म का स्रोत माना जाता है। स्मृतियाँ वेदों से अलग हैं और वस्तुतः "वह है जिसे याद किया जाता है"। वास्तव में याज्ञवल्क्य और मनु जैसे ऋषियों ने वेदों को सरलतम रूप में समझाया और उन्होंने समाज को उनके कर्तव्यों/अधिकारों, क्या करें और क्या न करें और कैसे संस्कार और अनुष्ठान किए जाने चाहिए, के बारे में विस्तार से बताया। इसीलिए धर्म के नैतिक और सामाजिक पहलू स्मृतियों और उपनिषदों में दिखाई देते हैं। उस समय धर्म को एक 'आचार संहिता' के रूप में व्यक्त किया गया था जो समाज के सदस्य के रूप में और एक व्यक्ति के रूप में मानव व्यवहार को नियंत्रित करता था। जैसा कि याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है-

इज्याचारमिदम हिंसा दान स्वाध्याय कर्मणाम।
आद्यम तु परमोंधर्म यतयोगेनात्मदर्शनम।। (याज्ञवल्क्य स्मृति, आचाराध्यायम्, 1.8)

(यज्ञ अनुष्ठान, अहिंसा, स्वाध्याय, दया और योग के माध्यम से आत्म-साक्षात्कार व्यक्ति का असीमित धर्म है।)

मनु के अनुसार, धर्म के अनुसार व्यवहार को विनियमित करने से आध्यात्मिक समाज के साथ-साथ व्यक्तियों का कल्याण संभव है। जैसा कि मनुस्मृति में कहा गया है - "वेद: अखिलो धर्म मूलं" जिसका अर्थ है वेद संपूर्ण धर्म की जड़ हैं। मनु ने कहा है कि पत्नी, पुत्र और धन मोक्ष प्राप्ति में सहायक नहीं हो सकते; केवल धर्म ही है जिसकी सहायता से मनुष्य सभी प्रकार की स्वर्गीय कठिनाइयों को पार कर सकता है। मनुस्मृति का निम्नलिखित श्लोक धर्म की विशेषताओं पर ध्यान केंद्रित करता है:

धृति: क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह:।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।। (मनुस्मृति, VI, 92)

The Asian Thinker
A Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Year-7 Volume: IV (Special), October-December, 2025
Issue-28 ISSN: 2582-1296 (Online)
Website: www.theasianthinker.com **Email**: asianthinkerjournal@gmail.com

अर्थात धैर्य, क्षमा, आत्मसंयम, स्थिरता, अधर्म विनियोग से परहेज, पवित्रता, इंद्रियों पर नियंत्रण, भौतिक विवेक, ज्ञान सत्यता और क्रोध का अभाव ये धर्म के दस गुण रूप हैं। तैत्तिरीय उपनिषद में हमने पाया कि धर्म शब्द का उपयोग सामाजिक नैतिकता के अर्थ में किया जाता है। एक राजा तभी सम्मान के योग्य होता है जब वह धर्म का पालन करता है-

धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति।
धर्मेण पापमपनुदन्ति धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितम् तस्मादद्धर्मं परमं वदन्ति ॥ (तैत्तिरीय उपनिषद,10,63)

(अर्थात धर्म ही एकमात्र ऐसी चीज है जो संपूर्ण विश्व को स्थिर और प्रतिष्ठित रखती है। लोग केवल उसी राजा पर विश्वास करते हैं जो धर्म का पालन करता है। सभी की प्रतिष्ठा और अधिकार धर्म के कारण है, इसीलिए धर्म सर्वोच्च है।)

ब्राह्मण वे ग्रंथ हैं जो वैदिक अनुष्ठानों और समारोहों पर प्रकाश डालते हैं। इन ग्रंथों में धर्म शब्द का प्रयोग सत्य और धार्मिकता के अर्थ में किया गया है। हमें शतपथ ब्राह्मण में एक श्लोक मिलता है का निहितार्थ है: जो धर्म है, वही सत्य है। इसीलिए कहा जाता है कि जो सत्य बोलता है, वह धर्म बोलता है, अथवा जो धर्म बोलता है, वह सत्य बोलता है।(शतपथ ब्राह्मण, 14: 4: 2:26)

जैसा कि हम पृष्ठभूमि में देखते हैं, धर्म को वैदिक अनुष्ठानों, लौकिक कानून और आचार संहिता के रूप में स्वीकार किया गया है। महाभारत में, धर्म का प्रयोग कर्तव्य और सदाचार के लिए किया गया था। महाभारत में "एषः धर्मः सनातनः" उक्ति को बार-बार दोहराया गया है, और धर्म को सत्य, अहिंसा, दया और कर्तव्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। (भगवद्गीता 16.2, महाभारत 4.281.34, 3.281.34, शांति पर्व, 130. 30)। एक अन्य श्लोक में हमें धर्म का अर्थ 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' 'स्वधर्म' के संदर्भ में मिला।(भगवद्गीता 3.35)

धर्म प्रतिदिन पाँच महायज्ञ (पुण्य महायज्ञ) करने के कर्तव्य का आधार है। सबसे पहले ब्रह्मयज्ञ है, जिसका उद्देश्य मुख्य रूप से पवित्र विद्या का संरक्षण करना है। दूसरा पितृ यज्ञ पूर्वजों को समर्पित है, जो भारतीय परंपरा में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह हमें ऐतिहासिक और सांस्कृतिक निरंतरता की श्रृंखला में एक आवश्यक कड़ी के रूप में हमारी भूमिका की याद दिलाता है। तीसरा देवयज्ञ, देवताओं के लिए बलिदान, इस तथ्य की मान्यता का प्रतीक है, कृतज्ञता के साथ कि मनुष्य के पास जो कुछ भी है और जो कुछ भी वह करता है, वह वास्तव में भगवान का है। चौथा भूत-यज्ञ, प्रकृति की सभी रचनाओं - भूत - के नाम पर किए जाने वाले बलिदानों का नैतिक महत्व वास्तव में बहुत महान है। इसके लिए मनुष्य को अपनी संपत्ति जरूरतमंद साथी प्राणियों के साथ साझा करने की आवश्यकता होती है। जैसा कि ऋग्वेद के एक ऋषि कहते हैं, "वह परम पापी बन जाता है जो खुद खाता है।" (केवलघो भवति केवलादि) । भगवद्गीता में भी यही भावना व्यक्त की गई है: "जो लोग अपने लिए खाना बनाते हैं, वे पाप में खाते हैं, और पापी हैं।" अंतिम नृ-यज्ञ, रोटी का बलिदान है (प्रचलित भारतीय आतिथ्य का दूसरा नाम)। यज्ञ की अवधारणा सुंदर, महान और संतुष्टिदायक है। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य का कोई अलग व्यक्तिगत अस्तित्व नहीं है और यदि उसे अपने अस्तित्व के आंतरिक नियमों को पूरा करना है तो उसका पूरा जीवन त्याग और कर्तव्यों से भरा होना चाहिए। यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि भारतीय परंपरा अधिकारों की तुलना में

The Asian Thinker
A Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Year-7 Volume: IV (Special), October-December, 2025
Issue-28 ISSN: 2582-1296 (Online)
Website: www.theasianthinker.com **Email**: asianthinkerjournal@gmail.com

कर्तव्यों पर अधिक जोर देती है। कर्तव्य को इस तरह से निभाया जाना चाहिए कि प्रकृति सहित दूसरों को नुकसान न पहुंचे।

प्राचीन भारत के ज्ञान का वास्तविक मूल्य वर्तमान में हमारे सामने आने वाली कुछ समस्याओं को हल करने की इसकी क्षमता में निहित है। अठारहवीं शताब्दी में यूरोपीय विचार में बुद्धिवाद की शुरुआत हुई और उन्नीसवीं शताब्दी में इसका बहुत अधिक विकास हुआ। धर्म को बदनाम किया गया। ईश्वर की निंदा की गई। सामुदायिक जीवन से आस्था को हटा दिया गया। लेकिन तर्क ने किसी भी महत्वपूर्ण तरीके से मनुष्य की खुशी में योगदान नहीं दिया है। तर्क ने उन समस्याओं का कोई नया समाधान पेश नहीं किया है, जिनकी उत्पत्ति धर्म और आस्था को माना जाता है। मनुष्य के सामने केवल अधिक गंभीर समस्याएँ ही हैं और तर्क ने केवल उपनिषद के इस कथन को ही सिद्ध किया है:

अर्थशास्त्र में धर्म:

अर्थशास्त्र राजनीति, आर्थिक नीति, शासन और प्रशासन पर एक प्राचीन भारतीय ग्रंथ है। अर्थशास्त्र की रचना लगभग 300 ईसा पूर्व हुई थी। अर्थशास्त्र वह विज्ञान है जो अप्राप्य को प्राप्त करने और प्राप्य अच्छे की रक्षा करने का मार्ग प्रदान करता है। जैसा कि अर्थशास्त्र कहता है;

"मनुष्याणां वृत्तिरर्थः, मनुष्यवती भूमिरित्यर्थः।
तस्याः पृथिव्या लाभ पालनोपायः शास्त्रमर्थशास्त्रमिति।।" (अर्थशास्त्र 15.1)

भारतीय दर्शन 'त्रिवर्ग' की बात करता है; जिसका अर्थ है कि मानव अस्तित्व के तीन लक्ष्य हैं: धर्म, अर्थ और काम। कौटिल्य के अनुसार धर्म सर्वोच्च है और यह अर्थशास्त्र का आधार है, इसके साथ ही अर्थ (धन) और काम (सुख) की प्राप्ति धर्म के प्रकाश में की जानी चाहिए। जैसा कि अर्थशास्त्र में बताया गया है कि यह धर्म, धन और कामना की रक्षा और संवर्धन करता है। यह शास्त्र (अर्थशास्त्र) अधर्म, बुराई और घृणा का भी नाश करता है। अब प्रश्न यह उठता है कि कौटिल्य के अनुसार धर्म का स्रोत क्या है? जैसा कि ऊपर उल्लेखित अन्य शास्त्रों की भांति कौटिल्य ने भी अर्थशास्त्र में वेदों को धर्म का आधार माना है। कौटिल्य ने धर्म का आधार 'त्रयी' माना है। (त्रयी का अर्थ है; "तीन वेदों ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद का संग्रह)"। कौटिल्य ने अथर्ववेद और इतिहास को एक दूसरे वर्ग में रखा है। कौटिल्य के अनुसार 'वर्णाश्रम' के कर्तव्य त्रयीधर्म के अनुसार होने चाहिए। अर्थशास्त्र में स्पष्ट कहा गया है कि जब त्रयी द्वारा निर्धारित कर्तव्यों का पालन चारों वर्णों और आश्रमों द्वारा किया जाता है, तब ऐसे समाज में धर्म जीवित रहेगा।(अर्थशास्त्र, 1.3.4) वर्णाश्रम शब्द चार वर्णों और चार आश्रमों को दर्शाता है। चार वर्ण हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र और प्रत्येक जाति के अलग-अलग कर्तव्य हैं जिन्हें 'स्वधर्म' कहा जाता है। उनके स्वधर्म का पालन करने से समाज में धर्म कायम रहता है। स्वधर्म के अलावा कौटिल्य ने सभी के लिए 'सामन्यधर्म' का सामान्य निर्देश भी दिया है। जो अहिंसा, सत्य, स्वच्छता, करुणा, क्षमा और अन्य हैं। यहाँ धर्म का प्रयोग नैतिक मूल्यों के अर्थ में किया गया है। अर्थशास्त्र ग्रंथ का अंतिम उद्देश्य एक शक्तिशाली राजा का निर्माण करना है, कौटिल्य ने उसे 'विजिगीषु' कहा है। उन्होंने राजा को दंड के प्रयोग से क्रमशः चारों वर्णों के कर्तव्यों को सुनिश्चित करने का आदेश

The Asian Thinker
A Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Year-7 Volume: IV (Special), October-December, 2025
Issue-28 ISSN: 2582-1296 (Online)
Website: www.theasianthinker.com **Email**: asianthinkerjournal@gmail.com

दिया है। इस तरह स्वधर्म को बनाए रखने में राजा की भूमिका प्रमुख हो जाती है। जैसा कि हमने अर्थशास्त्र में एक अंश पाया है।

"आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्च शाश्वती। विद्या ह्येताश्चतस्रस्तु लोकसंसृतिहेतवः" (अर्थशास्त्र 1.4.3)

(अर्थात् दण्ड आन्विक्षिकी (तर्क), त्रयी (तीन वेद), वार्ता (कृषि) और योगक्षेम (सभी का कल्याण) की रक्षा करने का साधन है। कौटिल्य ने उसे दण्डनीति कहा है।

शांति पर्व में धर्म:

दो महान महाकाव्य रामायण और महाभारत धर्म के बहुमुखी स्वरूप का अन्वेषण और विस्तार करते हैं। वैदिक काल से लेकर महाभारत काल तक हम धर्म में गुणात्मक परिवर्तन देख सकते हैं, जैसे; वैदिक काल में धर्म का प्रयोग 'वैदिक अनुष्ठानों का पालन' और 'ब्रह्मांड को बनाए रखने वाली शक्ति' के अर्थ में किया जाता था, लेकिन महाभारत काल में धर्म स्वधर्म, कर्तव्य, सत्य और अहिंसा का अर्थ प्रस्तुत करता है। महाभारत का एक पूरा पर्व, यानी शांति पर्व, धर्म की व्याख्या के लिए समर्पित है। महाभारत के युद्ध को 'धर्म युद्ध' के रूप में जाना जाता है, राजा युधिष्ठिर को 'धर्मपुत्र' के रूप में जाना जाता है और भगवान कृष्ण स्वयं को धर्म के स्रोत के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इसलिए महाभारत अलग-अलग स्थानों पर धर्म के अलग-अलग अर्थ प्रस्तुत करता है:

धर्मपुत्र युधिष्ठिर को भीष्म का संदेश राजधर्म (राजा के कर्तव्यों) के व्यवस्थित सिद्धांत की व्याख्या करता है। महाभारत के अनुसार राजा (राजधर्म) का कर्तव्य अपनी प्रजा (प्रजा) के कल्याण की तलाश करना और उसे बढ़ावा देना है। जब एक राजा अपनी प्रजा की रक्षा करता है और उन्हें खुश रखता है, तो वह अपना कर्तव्य पूरा करता है और समाज में 'धर्म' की स्थापना करता है। जैसा कि शांति पर्व में उल्लेख है, शोक में डूबे युधिष्ठिर को समझाते हुए महर्षि व्यास कहते हैं कि राजाओं का कर्तव्य है कि वे अपनी प्रजा का पालन करें।

प्रजानां पालनधर्मो राज्ञां राजीवलोचन।
धर्मः प्रमाणम लोकस्य नित्यं धर्मानुवर्तिनः।। (शांति पर्व, 32.2)

(अर्थात् हे कमलनयन! अपनी प्रजा (प्रजा) की रक्षा करना राजाओं का कर्तव्य है। जो लोग सदैव धर्म का पालन करते हैं, उनके लिए धर्म ही संसार का प्रमाण है।)

इसके अतिरिक्त शांति पर्व में नारद मुनि ने भी राजा युधिष्ठिर को वृद्ध भीष्म से प्रश्न करने की सलाह दी, जो चारों वर्णों के विविध कर्तव्यों को जानते थे। जैसा कि हमने यहां एक श्लोक में पाया, राजा चारों वर्णों के कर्तव्यों का रक्षक और पालनकर्ता है।

तस्मै नित्यं कार्या चातुर्वर्ण्य विपशवीता।
धर्मात्मा सत्यवाक् चैव राजा रंजयति प्रजाः।। (शांति पर्व, 56.36)

(इसका अर्थ है; एक विद्वान राजा को हमेशा चारों वर्णों के प्रति दयालु होना चाहिए; केवल एक सदाचारी और सत्यवादी राजा ही अपनी प्रजा को प्रसन्न रख सकता है।)

एक और श्लोक जो राजधर्म को संपूर्ण जीवित दुनिया के आश्रय के रूप में समझाता है। इसका अर्थ है कि ब्रह्मांड में धर्म सर्वोच्च है और सभी चीजें धर्म द्वारा कायम हैं। सर्वस्य जीव लोकस्य राजधर्म परायणं। (शांति पर्व 56.3)

The Asian Thinker

The Asian Thinker
A Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Year-7 Volume: IV (Special), October-December, 2025
Issue-28 ISSN: 2582-1296 (Online)
Website: www.theasianthinker.com **Email**: asianthinkerjournal@gmail.com

महाभारत में, धर्म का प्रयोग सदाचार, नैतिकता और सत्य के अर्थ में भी किया जाता है। महाभारत में "एष धर्मः सनातनः" की उक्ति अक्सर दोहराई जाती है, और धर्म को सत्य, अहिंसा, दया और कर्तव्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। (भगवद् गीता 16.2, महाभारत 4.281.34, 3.281.34, शांतिपर्व, 130. 30)। महाभारत अहिंसा के गुणों की प्रशंसा करता है। अहिंसा सर्वोच्च सत्य है जिससे सभी धर्म (जैसे बौद्ध, जैन आदि) आगे बढ़ते हैं। अहिंसा परमो धर्मः सूक्ति को विभिन्न श्लोकों में कई बार दोहराया गया है। (महाभारत, 2.207.74, महाभारत 1.11.13, 1.115.23,1.115.1, 1.116.27, 1.116.29)

महाभारत में धर्म राजसभा में अपनी उपस्थिति का एहसास कराता है जब द्यूतक्रीड़ा का खेल होता है। जब कौरव द्रौपदी का चीरहरण करते हैं, तो कृष्ण उसे बचाते हैं। इसका मतलब है कि जो धर्म का पालन करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है। जैसा कि महाभारत में कहा गया है:

तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।

'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।। (महाभारत, 2.313.128)

महाभारत युद्ध में कृष्ण ने अर्जुन को धर्म का ज्ञान दिया जब वे धार्मिक दुविधा का सामना कर रहे थे। स्वजनों के प्रति मोह के कारण अर्जुन अपने धर्म से विमुख हो जाता है तब श्रीकृष्ण उसकी आंखें खोलते हैं। भगवद्गीता में स्पष्ट उल्लेख है; क्षत्रिय के लिए धर्म और युद्ध से बढ़कर कुछ भी नहीं है। साथ ही वेद द्वारा निर्धारित स्वधर्म (कर्तव्य) का महत्व भी बताया।(अध्याय 2.31)

इस प्रकार कृष्ण कहते हैं कि अपने कर्तव्य (स्वधर्म) को निभाने से बड़ा कोई धर्म नहीं है। वे अर्जुन से कहते हैं कि *सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।* अर्थात् उसे (अर्जुन को) केवल कृष्ण की शरण में चले जाना चाहिए, वह शरणागति उसे सभी प्रकार के पाप कर्मों से बचा लेगी। इस प्रकार कृष्ण स्वयं को धर्म का रक्षक बताते हैं।

निष्कर्ष:

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि धर्म शब्द विभिन्न अर्थों को प्रदर्शित करता है जैसे नैतिक मूल्य, कर्तव्य, वैदिक अनुष्ठान, धार्मिकता, सत्य, या विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया जाता है। वर्तमान समय में धर्म को विद्वान धर्म के अर्थ में भी देखते हैं, धर्म को धर्म का अंग्रेजी पर्यायवाची माना जाता है। जो कि गलत है। कैम्ब्रिज डिक्शनरी के अनुसार धर्म शब्द का अर्थ है 'किसी ईश्वर या देवताओं में विश्वास और इससे जुड़ी गतिविधियाँ'। समकालीन दुनिया में जाति, संप्रदाय, नस्ल दुनिया को विभाजित कर रहे हैं। "यतो अभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः" अर्थात् धर्म वह अनुशासित जीवन पद्धति है जिसमें सांसारिक उन्नति तथा आध्यात्मिक मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है। इस प्रकार धर्म व्यक्ति के अनुशासित तथा संयमित जीवन में सहायक होता है। आज वैश्वीकरण के युग में जीवन अर्थ प्रधान हो गया है, जिसके कारण समाज मूल्यविहीन हो गया है। ऐसी स्थिति में पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) तथा आश्रम (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, गृहस्थ, संन्यास) की अवधारणाएँ निरर्थक हो गई हैं।

धर्म द्वारा निर्धारित मार्ग ही मानव जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान में सहायक होगा। इसके साथ ही धर्म के कुछ ऐसे पहलू भी हैं जो वर्तमान समय में प्रासंगिक नहीं हैं। आज हम जिस लोकतांत्रिक व्यवस्था में रह रहे हैं वह अधिकार आधारित है (मानव को विवेकशील प्राणी मानती है) जबकि धर्म अधिकारों को नहीं बल्कि कर्तव्यों को प्राथमिकता देता है, जिसके कारण समाज हावी हो जाता है और वह व्यक्ति (मुख्यतः स्त्री) को ऐसे कर्तव्यों में बांध

The Asian Thinker
A Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Year-7 Volume: IV (Special), October-December, 2025
Issue-28 ISSN: 2582-1296 (Online)
Website: www.theasianthinker.com **Email**: asianthinkerjournal@gmail.com

देता है जिससे उसे घुटन महसूस होती है। धर्म वर्ण व्यवस्था पर आधारित समाज की बात करता है जो पदानुक्रम पर आधारित है और असमानता और अन्याय को जन्म देता है।

संदर्भ ग्रंथ:

- शामाशास्त्री, आर.(1923), *कौटिल्य अर्थशास्त्र,* मैसूर।
- महाभारत, शांतिपर्व, गीताप्रेस गोरखपुर, पुनर्मुद्रित 2001.
- विल्सन एच.एच.(1946), *ऋग वेद संहिता,* द बंगलौर प्रिंटिंग एण्ड पब्लिशिंग कंपनी।
- बसंत, एनी (1964), *धर्म,* थीओसाफिकल पब्लिशिंग हाउस, मद्रास।
- बेरेटों, जे.पी.(2004), धर्म इन ऋग्वेद, *जर्नल ऑफ इंडियन फिलासफी*, 32:449-489.
- घोषाल यू.एन.(1959), *ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन पोलिटिकल आइडियाज*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, बॉम्बे।
- जायसवाल, के.पी.(1924), *हिन्दू पॉलिटी – ए कान्स्टिटूशनल हिस्ट्री ऑफ इंडिया इन हिन्दू टाइम्स*, बटरवर्थ एण्ड कंपनी, कलकत्ता।
- काणे, पी. वी.(1930), *हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र – वॉल्यूम 1*, भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट।
- मिश्र, के.के.(2004), द स्टडी ऑफ एनसिएन्ट इंडियन पोलिटिकल ट्रेडिशन्स, *इंडियन जर्नल ऑफ पोलिटिकल साइंस*, वॉल्यूम 65, पृष्ठ 9-20.
- सिंह, एम.पी. (2017), कौटिल्य : थ्योरी ऑफ स्टेट इन हिमांशु रॉय एण्ड एम.पी. सिंह (संपा.), *इंडियन पोलिटिकल थॉट – थीम एण्ड थिंकर्स,* पीयर्सन इंडिया एजुकेशन सर्विसेज़ प्राइवेट लिमिटेड, नोएडा।
- सूद, जे.पी.(1970), धर्म: इट्स नेचर एण्ड रोल इन एनसिएन्ट इंडिया, *इंडियन जर्नल ऑफ पोलिटिकल साइंस*, वॉल्यूम 31, पृष्ठ 356-366.

The Asian Thinker